भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

केशवकी कविताएँ

- हिन्दीका पाठक केशवचन्द्र वर्माके नामसे ही नहीं, कामसे भी परिचित है। जब वह यह हस्ताक्षर देखता है तो उसे बड़ी आशासे उठाता है—क्योंकि वह नई खिड़कियोंसे नया तमाशा देखनेकी एक संभावना पाल लेता है।
- जो लोग केशवचन्द्र वर्माकी कहानियाँ, उपन्यास, नाटक और निबंध पढ़-पढ़कर रस लेते रहे हैं, उन्हें यह नहीं भूला होगा कि केशवचन्द्र वर्मा कविताके फाटकसे ही साहित्यके भीतर घुसे थे और उस फाटकसे उन्हें अब भी इतना मोह है कि वे वक़्त-बेवक़्त वहाँ जाकर अपनी 'ड्यूटी' कर आते हैं! प्रस्तुत संकलन उन्हीं 'ड्यूटी आर्वस' (जवरन-बैठकी) की देन है!
- कुछ लोग केशवचन्द्र वर्माको 'अकविता'का, कुछ पुरानी-कविताका, कुछ नई-कविताका, कुछ पुरानी-नई-कविताका और कुछ नई-नई कविताका कवि मानते हैं! उनके इतना माननेपर भी केशवचन्द्र वर्माकी कविताओंपर कहीं ज़रब नहीं आया है!
- स्वयं कविका दावा है कि इस संकलनकी कविताएँ अच्छे आदमीको अच्छी लगेंगी और बुरे आदमीको बुरी लगेंगी। इनका बुरा लगना जीवित रहनेकी पहिचान है!

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—१३४

वीणापाणि के कम्पाउण्ड में

केशवचन्द्र वर्मा

भारतीय ज्ञानपीठ
काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला
सम्पादक और नियामक :
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रथम संस्करण
१९६१
मूल्य तीन रुपये

प्रकाशक :
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

मुद्रक :
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी

अनुक्रम

आत्म-विज्ञापन

* मेरी ये सारी कविताएँ 'प्रतिक्रियावादी' हैं—यानी कुछ 'क्रियाओं' की 'प्रतिक्रिया' स्वरूप उपजी हैं !

* मेरी ये कविताएँ अच्छे आदमीको अच्छी लगेंगी और बुरे आदमी-को बुरी लगेंगी !

* मेरी ये कविताएँ मात्र शीर्षक पढ़नेवाले पाठकों और पूरी रचना पढ़नेवाले पाठकोंको समान रूपसे रोचक लगेंगी क्योंकि इनमें दोनों ही वर्तमान हैं !

* मेरी इन कविताओंका इतिहास जितना रोचक है, भूगोल भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। इतिहास बनानेवाली भौगोलिक परिस्थि-तिओंका सही मूल्यांकन ही बड़े लेखकको जन्म देता रहता है !

* मेरी इन कविताओंमें वे समस्त गुण विद्यमान हैं जो किसी कविको 'सहज-महान्' बनवाते हैं—पहिचानने वाले कभी नहीं रहते; आज भी नहीं हैं !

* मेरी ये कविताएँ पहिले प्रकाशककी दृष्टिसे अच्छी लगीं, फिर आलोचककी दृष्टिसे, फिर पाठककी दृष्टिसे ! आप भी उसी दृष्टि-क्रमसे देखें !
* मेरी इन कविताओंमें बड़ी सम्भावनाएँ निहित हैं—

(१) यदि यह संकलन चल गया तो प्रारम्भिक रचनाएँ भाग १, भाग २, भाग ३, भाग ४ के लिए मेरे पास बहुत मसाला है !

(२) समय मिलनेपर हर कविताके साथ एक लम्बा वक्तव्य भी जोड़ा जा सकता है जो कविताके अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुओंपर प्रकाश छोड़ सकता है !

(३) एकदम प्रेम तो नहीं पर 'प्रेम' का आभास देनेवाली दो-चार 'चीज़ें' इसमें इधर-उधर पड़ी हैं, जो मेरी बुढ़ौतीमें प्रेम-में-डूबी-हुई आध्यात्मिकताके लिए काम आयेंगी !

* मेरी ये कविताएँ, जैसा कह ही चुका हूँ, अच्छे आदमीको अच्छी लगेंगी और बुरे आदमीको बुरी लगेंगी ! इनका बुरा लगना आपके जीवित रहनेकी पहिचान है !

प्रयाग
होली, १९६१

—केशवचन्द्र वर्मा

वीणापाणिके कम्पाउण्डमें

एक सुझाव

सच कहता हूँ
अगर यक़ीन नहीं पड़ता है तो आज़मा कर देखिए
अब की आप आये तो ढूँढ़े जगह नहीं मिलेगी।
और यह रेंट कण्ट्रोलर तो आपको मकान देने से रहा!
सच कहता हूँ
आप जैसे तीन सौ पैंसठ वहाँ घूमते रहते हैं
लेकिन एलाटमेंट हुकुम उन्हें मिलने से रहा।
जी?
जी, पुराने मकान में तो अब गल्ला-गुदाम है!
उस ज़माने के भगवान आप रहे होंगे
आज के युग के तो भाग्यवान एम० एल. ए. महाराज हैं।

वैसे ट्राई कर लीजिए
अगर अपनी तनख़्वाह से ज़्यादा किराया दे सकते हों
तो कहीं कोशिश कीजिए।
लेकिन वापस आसमान लौटने से पहिले
एक मेरा सुझाव है
जगह बहुत छोटी है
फिर भी काम लायक़ है
वहाँ रह-रह कर आप घूम-फिर भी सकेंगे
मुमकिन है दो चार काम की बात भी कह जाँय।
जी, कहीं दूर नहीं
बिल्कुल पास।
आइए दिखा दूँ
यही है जगह जिसे मैं कहता था
जी, यह है मेरी कलम की निब।

लघु मानव का स्वागत

माया ब्रह्म और जीव की समस्त एक्टिंग पर
एक नया ड्राप सीन डाल कर
तमग़ा लगाये मनेजर की तरह
आप जो दर्शकों का अभिवादन करने के लिए प्रगटे
सो आपका स्वागत है।
फैमिली प्लैनिंग की समस्त योजनाओं को चुनौती ठाने
दोनों घूँसे भरपूर ताने,
आप जो सरोष प्रगटे
सो, आपका स्वागत है।
अस्पताल की नर्सें और डाक्टरनियाँ
जिसे देख बुआ और दादियों की तरह

अपना-अपना नेग माँगने झपटीं
उन आपका स्वागत है !
स्वागत है आपका घर की उस चहारदिवारी में
जहाँ से सुबह सात बजे ही बस पकड़ने के लिए
अब्बाजान दफ़्तर निकल जाते हैं ।
माता जी आपको पालने के लिए पास के स्कूल में
दस से पाँच तक पढ़ाती हैं ।
स्वागत है आपका उन स्कूली दरवाज़ों पर
जिनमें एडमिशन कराने के लिए
डैडी कैजुअल-लीव लेकर
असफल चक्कर काटते हैं ।
स्वागत है आपका उन दरवाज़ों पर
जहाँ मक्खन लगाने वालों का चिर क्यू लगा हुआ है
स्वागत है आपका उन दरवाज़ों पर
जो हँस कर बैठायेंगे—पीठ पीछे गालियाँ बरसायेंगे ।
स्वागत है आपका उस दरवाज़े पर
जहाँ आपकी प्रियतमा
आई ए एस होने पर ही प्रेम की पूर्णता बतायेगी
आपको समझायेगी
और फिर मज़े से इक दिन किसी साहब की मेम बन
सहानुभूति पूर्ण रुख़ से सस्नेह तुम्हें कंडम करवायेगी ।
पर
इन सब के बीच शायद कुछ ऐसे हों
जो तुम्हारे स्वागत में खीसें न निपोरें
आने पर तुम्हारे
हाथों में हथौड़े पकड़ायें
और समझायें
अपने इन स्वागत-द्वारों को ढहा दो

और
सिर पर तुम्हारे कुछ ऐसा बोझ दे मारें
जिससे तुम्हारी असंतुलित डुगडुग गर्दन सीधी हो जाय।
सीना तन जाय,
बाँह कसमसाय;
—उन सबके दरवाज़े पर तुम ख़ुद जाना
भोंपू बजाना औ' बताना
तुम्हारे दरवाज़े पर मैं ख़ुद अपना स्वागत करता हूँ।

नाम महिमा

एक थे खुशदिल मिस्टर मट्टू।
उन्होंने अपने दो पुत्रों का
बड़े चाव से किया नामकरण—
(असाधारण, अनकॉमन, कनचिपकू !)
एक का चपरगट्टू
और दूजे का श्रीयुत् बजरबट्टू।
गट्टू और बट्टू बंधु
मात्र नाम के ही सहारे जाने गये दिग्-दिगंत में।

किन्तु—
नाम के ही कारण

गट्टू और बट्टू बंधुओं को
उनकी भरी जवानी में
[जब वे ललचाई आँखों से देखते थे
रंगी-चुंगी तितली-सी फुदकने वाली
बाब्डकट बालों को नखरे से झटक कर
हर मिनट 'बॉश' कह कर पीछे फेंक देनेवाली
कूक भरते ही भौहों को धनुष-मार्का घुमाने वाली
'स्टैण्ड' पर अपने 'डेली-प्रियतमों' को टाटा कहती हुई
लपक कर बस पर चढ़ जाने वाली सूरतें—
हाय मार कलप कर रह जाते ।]
किसी लड़की ने नाममात्र को भी अपनाया नहीं ।
[कौन चपरगट्टू की 'चहेती' कहलाती भला ?
कौन बजरबट्टू को 'बालमा' बुलाती भला ?]

नाम के ही कारण गट्टू और बट्टू बंधु
इम्तहान पास कर लेने पर भी
अफ़सरी के इंटरव्यू से हरबार निकाल दिये गये
(कौन चपरगट्टुओं की डाँट-फटकार मानता ?)
अध्यापकी चाही
पर कालिज की सारी दीवारों पर
अपने नामों का भ्रष्ट विज्ञापन देखने से सहम उठे ।
वकालत की पास
पर मुवक्किल एक पास नहीं फटका ।
नेतागिरी करने की ठानी ।
आम कार्यकर्ता के रूप में सबने उन्हें स्वीकारा
पर इलेक्शन में इस नाम को
अपनी पार्टी का टिकट देने से सबने साफ़ इन्कारा
झकमारा इंश्योरेंस-एजेण्टी तक में

सब के दरवाज़ों पर नामों की विभीषिका ने किंतु
झपट कर 'बन्द हो जा समसम' की लेबिल लगा दी !!
हर ओर सुनकर अपनी नाम-महिमा
जब उन्होंने उसे बदलने की सोची
तब पता चला—
ख़ुशदिल मिस्टर मट्टू वसीयत कर गये थे—
नामों में तनिक-सा भी परिवर्तन करने से
(दो आँखोंवाली क्या)
कानी कौड़ी भी नहीं पाओगे बच्चू।

पथहारे, मनमारे, तनजारे
गट्टू और बट्टू बन्धुओं को
सहसा एक 'वेलकम' का बोर्ड दिखा—
साहित्य साधकों के अखाड़े का महान् गेट।
पकड़ कर कलम की उँगली
घुस गये दोनों आँख मूँद कर उसमें बोल कर—
जय मिस्टर मट्टू की !
जय बजरबट्टू की !!
जय चपरगट्टू की !!!
जाना उन्होंने इस गेट के भीतर
नामों का कोई भी महत्त्व नहीं।
एक-से-एक गूढ़ और मूढ़ नाम हर कोने में विराजते
छद्म नामों से लोग जिन्हें जानते !
दोनों को नामों की शक्ति आज पहिली बार दीख पड़ी।

गट्टू और बट्टू बन्धु
अब सचमुच कृतज्ञ हैं ख़ुशदिल मिस्टर मट्टू के
जिन्होंने उन्हें ऐसे नाम देकर
'साहित्यिक-कॉलम' लिखने में सिद्धहस्त किया।

३

छद्मनाम लेकर वे पेट से ही आये
इसी कारण
हर पत्रिका उन्हें फुसलाती, अपनाती है।
लगे हाथों यश की टोकरी दे जाती है
उन्हें बारम्बार नोटिस में लाती है।

•

छद्मनामों की बढ़ती हुई माँग को
पूरा करने के हेतु
गट्टुओं ने पेटजन्य छद्मनामों पर भी धरे कुछ और नाम—
बन वे :
चक्रधर : (० धर !)
यूँ हलन्त : (हल का अन्त ही देते कर)
बूँ बलन्त : (बुल की लंत खाते और चिल्लाते)
अनुस्वार : (मिमियाते स्वर से सबको गुहराते)
फूत्कार : ('फूत' करके कार से भाग जाते)
नचिकेता : (नि–'केता + केता नचि आवैं एक रूप धरि के)
भ्रमरानन्द : (झूठा भ्रम + मरानन्द–असली रूप देखि के !!)
एकलव्य : (कलव्य को ए ऽ ए ऽ पुकारते ही रहे जीवन भर !
लव्य (लव करने योग्य) उन्हें मिला सिर्फ़ एक ही !)
पुष्पदन्त : (बूढ़े हो चले—मुँह पोपला–दाँत पुष्प से–कुछ भी न
खा पाये।)
समुद्रगुप्त : (लेख-वेख क्या है, गुप्त कर दें समन्दर को भी जो !)
प्रकटित हुए वे विविध वेश, अमित रूप
ठौर-ठौर, पेज-पेज, पंक्तिबद्ध
कुछ ही दिनों में वे
समुच्चरित हुए
जन-मन में
कन-कन में।

लोग कहते हैं–
जय हो बजरबट्टू की
जय हो चपरगट्टू की।
पर वे कहते हैं–
जय हो
जय हो सिर्फ़ ख़ुशदिल मिस्टर मट्टू की।

चरन कमल बंदौ : एक भजन

मेरा मन चरनों में लागि रहा ।
जिन चरणों ने भाषण हित
दिक् दिक् मैदान मँझाए
अगनित चरन चुनाव संग में
चले गये डोरियाए ।
जिनके ध्यान मात्र से खुलता
कौंसिल द्वार सुहावन,
हाथ उठावन, जीव जुड़ावन
एमएलए-गीरी माँगि रहा ।
मेरा मन चरनों में लागि रहा ।

जिनके नख से द्रवै जग तरनि
मातु-नौकरी-गंगा
चरन कमल माखन से लिपटे
अपहुँच कंचन-जंगा !!
जिनकी यह लतधूर सीस पै
धरत प्रमोशन आवै
पहुँचावै जो अपरग्रेड में
ताही में मन पागि रहा ।
मेरा मन चरनों में लागि रहा !

जिनके चरन प्रताप बनाते
लेखक कवि विज्ञानी ।
जो छपवाते लैला मजनूँ वाली
प्रेम कहानी–
युग का गायक जिन्हें बनाते
धूल झोंकि आँखों में,
उनकी अशरण-शरण ग्रहण कर
मन सब दुबिधा त्यागि रहा ।
मेरा मन चरनों में लागि रहा !

सकल सिद्धि सुख सम्पति दायनि
महिमा चरन छुई की
आदाबरज़, सलाम, बंदगी
अब सब लागत फीकी

जहँ जहँ चरन पड़ैं ये तहँ तहँ
माटी सोन बनावैं–
स्वर्णधूरि तिनहीं चरनन को
लेने को मन भागि रहा ।
मेरा मन चरनों में लागि रहा ।*

---

* श्रीमती विद्यावती कोकिलकी पहिली पंक्तिके लिए आभार ।

नया साल

घड़ी की सूइयाँ खिसकीं
कलेण्डर के पन्ने फटे
पुराना पेज हटा, ताजा वर्क सामने आया ।
यह लो नया साल शुरू हुआ ।
चुन चुन कर लिखे हुए ग्रीटिंग कार्ड
डाकिये लाने लगे !
[झूठमूठ]
खीसयुक्त अभिवादन बधाई का वातावरण छा गया ।
अपने हाथों में ताज़े फूलों के मोरपंखी गुच्छे लिये
तुम हो कि दौड़ चले अपनी 'टू टू' के पास
बटनहोल में 'स्वीट-पी' लगा

शुभकामनाओं की लम्बी फेहरिस्त वाली कविता
के साथ ।
छोड़ा म्यां !
यह है कैलेण्डर के पन्नों का पिटा हुआ
सालाना मज़ाक—
[बार बार एक सा]
सोचो,
जिसे आज कर रहे हो
वही कल परसों या नरसों करते
तो कौन सी प्रेयसी
मोरपंखी गुच्छे फेंक, कविता फाड़ डालती ?

•

कलेण्डर के पन्ने बदलने पर
खुश हों वे
जिनकी जयन्तियाँ पड़ेंगी इस साल
[मिलेंगे अभिनन्दन ग्रन्थ स्थूलकाय !]
जिनके जन्म-दिन पर
बंदनवार बनाने भर को
अनगिन बधाइयों के रंगीन तारफार्म—
भरभराएँगे ।
अपने सेट-पोज़ों में फोटो खिंचाएँगे
हाथ जोड़ जोड़ दावत खिलाएँगे ।

•

फिक्र हो उन्हें
जिन्हें इस साल कराना है पार्टी-कन्वेंशन, 'जन-आन्दोलन'
उल्लू करना है सीधा जिन्हें
चन्दा वसूल कर, लड़ कर बाई-इलेक्शन ।

फ़िक्र हो उन्हें
जो अपनी तिजोरियों में बन्द
सोने की मोटी ईंट बैलेंस-शीट पर तुलते देख
सोचेंगे—कैसे अब की इन्कमटैक्स ग़ायब करें ?
फ़िक्र हो उन्हें
जिनकी अपनो क़लम और ज़बान बेंच कर
बाज़ार रहते दाम खड़े कर लेना है।

बोलो,
इन नक्शे' में तुम्हारा यह
ग्रीटिंग कार्ड,
कहाँ फ़िट करूँ ?
मोरपंखी गुच्छे और रूमानी कविता।
इस सेटिंग में होंगे मात्र
द्रविड़ प्राणायाम !

घड़ी की ये खिसकती सूइयाँ—
कलेंडर के फर्र फर्र फटते पन्ने—
इन्हें सिर्फ़ देखते जाओ
इन्हें सिर्फ़ सुनते जाओ
सिर्फ़ कहने सुनने से मित्र !
नया कभी आया नहीं !!

प्यार का रोग

वह थे मेरे दोस्त
मुझे अक्सर चौराहे पर मिल जाते
घंटों खड़े खड़े हम दोनों
कुल रिक्शों की लिस्ट बनाते
अच्छे चंगे भले एक दिन
सुबह सुबह ही आये घर पर
खोये खोये से गुमसुम से
लगे बताने मुझसे आ कर—

'जाने क्या हो गया मुझे है ? नित चिन्तातुर हूँ मैं व्याकुल
आँखें पुरनम, दिल कुछ धुक धुक, किसी व्यथा में जीता घुल घुल
मैंने उनकी नब्ज़ थाम ली—बोले 'जीवन भार हो गया।'
समझ गया मैं रोग मियाँ का कहा—'आपको प्यार हो गया !!'

यह संक्रामक रोग
सिनेमा से अक्सर पैदा होता है
जिसे लगा यह एक बार
वह आठ आठ आँसू रोता है
यह हल्की फुल्की टी० बी० है
जो कि आपको चित कर देगा
मनीबेग की सारी सूजन
यह मिनटों में ही हर लेगा ।

कभी कभी छुतिहा-बीमारी
यह कालिज से भी आती है
पर लगने वालों को तो
यह चलती राहों लग जाती है !

यह कि किसी दिन बुरी जगह ले जाकर तुमको मरवाएगा
यह कि किसी दिन अनजाने में कविता तुमसे करवाएगा
यह कि प्राण, प्रेयसि औ प्रियतम, वाहियात सब रटवाएगा
यह कि नौकरी से हुजूर का पत्ता चटपट कटवाएगा ।
यह कि चार दिन में ही चेहरा चूसा आम बना देता है
यह कि दोस्तों की मजलिस में टॉपिक खुद बनवा लेता है ।
यह कि अन्त में स्वयं आपको उल्टा बुद्धू ठहराएगा
यह कि तुम्हारी ही नज़रों में तुमको ही खुद गिरवाएगा ।

अब तक कितने लगे–
लगेंगे कितने इस 'पंचइती-घाट'
तुम भी चाहो तो
ले आओ इसी किनारे अपनी खाट !

इसका नेचर क्योर है सही,
पर होता वह धीरे धीरे
यह नासूर हवा हो जाता
कभी कभी बिन फाड़े चीरे
अक्सर तो इन्सल्ट करारी
रामबाण सी हो जाती है—
जो कि बिना मरहम पट्टी के
इस जहान से छुटवाती है।

•

अभी अभी का रोग अगर है बदनामी का चूरन खाओ
मर्ज़ पुराना हो तो थुका-फजीहत का काढ़ा पी जाओ
पर इलाज से बेहतर माना जाता है वह रोग बचाना
इसीलिए मैं फ़र्ज़ समझता हूँ कुछ गुर की बात बताना—

भरी जवानी के आलम में
नहीं चाँदनी में तुम टहलो
टहलो भी तो किसी
एडीटर के संग में बस गुमसुम टहलो—
जो कि चाँद पर हमले के
क़िस्से कुछ तुमको बतलाएगा।
जो कि रूस औ अमरीका के
नक़ली चन्दा उड़वाएगा !!

•

और सिनेमा जाना तो—
बिन देखे ही बाहर आ जाना।
जाकर जमुहाना औंघाना—
मूँगफली के दाने खाना—!!
[चाहे गिरियाना !]

जग की सब सुन्दरता को तुम मृत-नानी का रूप समझना
उनसे डरना, उनसे बचना, सोच समझ कर कहीं उलझना ।

अगर उलझना भी तो आँखों पर
धूपी-चश्मा हो प्यारे !
चश्मे के नीचे नीचे
अपराध सभी हैं क्षम्य तुम्हारे !

शान्ति का दूत

रिक्शा रुका
लुंङ् चू वान की दूकान के आगे।
उतर पड़ा शान्ति का दूत
वह कवि !
जिसकी बग़ल में एक नहीं
तीन चार फ़ाइलें थीं—
कोई कविताओं की, कोई विज्ञापनों की
कोई मेनीफेस्टों की
कोई उन किताबी पन्नों की जिसे उसने
बड़ी मेहनत से, हिम्मत से
पब्लिक-लाइब्रेरी की किताबों से उड़ाये थे।

उसके बाल
साइबेरिया के जंगलों की तरह बिखरे थे
मत्था कुछ उभरा-सा चमकता सा
जैसे वहाँ की पड़ी बर्फ़—उसके दिमाग़ सी
जमी हुई।
गालों में गड्ढे
जैसे कैस्पियन सागर देख कर उसने बनवाये हों !
नाक कुछ चमकती—कज्ज़ाकों सरीखी
स्वर कुछ तेज़—मास्को रेडियो जैसा
पहिले की पैंट शर्ट
अब बदल गये थे कुर्ते पैजामे
और मोटे .फ्रेम के धूपी-चश्मे से
जैसे पीटर्सबर्ग हो गया हो उसकी देह पर लेनिनग्राड।
एशिया के बारे में उसके विचार पहिले बहुत बोदे थे।
लेकिन लोगों के कहने सुनने से
चीन के लिए
उसने अपने मन में इधर
धीरे धीरे बहुत पुख़्ता विचारधारा बना ली थी
बिल्कुल चीन की दीवार सी।
बहरहाल, रिक्शा रुका
लुंङ् चू वान की दूकान के आगे।
देकर चवन्नी उसे टरकाया
'अधिक किचकिच मत मचाओ
हो रहा है दाँत में कुछ दर्द
ख़ुश रहो, दूसरी सवारी ढूँढ़ो।'
रिक्शावाला बेचारा
टुकुर टुकुर ताकता खिसक चला
जैसे कोई छायावादी कवि

प्रयोगवादियों की मार से भगा हो ।
शान्ति का वह दूत, भीतर घुसा दूकान में ।
दाँत के डॉक्टर की चीनी दूकान—
चीनी सामान—
चीनी सारा इन्तज़ाम—
सब कुछ कितना अच्छा लगा उसे
जैसे उसकी कल्पना को नया द्वार हो मिला ।
यह चारों तरफ़ दाँतों के नये नये सेट
लटके हुए चित्र
हँसती हुई मेमों के
जिन्होंने अपने दाँत इसी दूकान से बनवाये थे ।
उसने सोचा :
दाँत ही प्रगति का चिह्न है ।
पृथ्वीपुत्रों का उपजाया यह सारा अन्न बेकार है
अगर दाँत नहीं हैं ऐसे जो
उन्हें बत्तीस बार चबा चबा कर खा सकें ।
फिर उसे ग्लानि हुई
यह भी देश कैसा है
जहाँ सभी डॉक्टर हैं
पेट के, नाक के, कान के
हाथ के, पाँव के—किन्तु नहीं दाँत के !
दाँत यह अस्त्र है नारी अबलाओं का
पीसित् प्रबाड़ित वर्ग का
इसीलिए इसका महत्त्व चीनियों ने आँका है ।
उसने देखा
छाता लिये चीनी सुन्दरी का कलेण्डर
जो उसकी अपनी प्रेयसी से हज़ार गुना सुन्दर थी ।
उसने सोचा

उसी तरह की लुंगी वह उसके लिए भी लाएगा।
और यह आरामकुर्सी
चीनी मख़मल में लपेटी
जिस पर बैठने के सुख में
दाँत क्या, इंसान सर तक तुड़वाने में हिचके नहीं।
काश, ऐसी कुर्सी मेरे ड्राइंगरूम में भी होती।
तब तक लुंङ् चू वान पर्दा हटा, भीतर घुसा।
लुंङ् चू वान।
उसे लगा साक्षात् माओ का प्रतिनिधि
वही रूप, वही रंग, वही ढंग
जैसे तस्वीर में उसने अभी देखा था।
कवि ने बड़े आर्त स्वर में कहा :
[जैसे उसके कंठ में चीन की शोक की नदी हो उमड़ी हुई]
'साथी ! मेरा यह पिछला दाँत
कई दिन से हिलता चला आता है
बहुत तकलीफ़देह, फिर भी उखड़ता नहीं
बिल्कुल बुर्जुवा कल्चर जैसा।
इसको तुम नष्ट करो
इसको तुम भ्रष्ट करो
क्रान्तिदूत ! मुझको इस कष्ट से किसी भाँति मुक्त करो।
उखड़ गया दाँत।
पर लम्बा बिल देख वह बोल उठा चतुर कवि :
'बन्धु मेरे ! मैं बहुत बदक़िस्मती से हो गया इस देश में पैदा
नहीं मैं कर्म से, निज धर्म से और सचमुच शर्म से कहता
'मैं तुम्हारा बन्धु हूँ।'
मुझे यह चीन बहुत अच्छा लगता है
[अपने स्वरों में उसने अफ़ीम की मादकता उतारी—
और फिर बोला :]

५

'चाय और चावल के बिना मैं जी नहीं सकता
रेशम भी मैं चुरा छिपा कर घर में पहिन ही लेता हूँ
सच मानो मैं चाहता हूँ कि चीनी आत्मा किसी तरह
मेरे अन्दर प्रवेश कर जाय।
पैसे से मैं लाचार हूँ
मैं तुम्हारे लिए साहित्यिक-विज्ञापन लिख सकता हूँ
चाहो तो साइनबोर्ड भी तुम्हारा अपने मित्र से लिखा दूँगा।
लेकिन मेरी जान छोड़ दो।'
और बहुत किचकिच के बाद
एक साहित्यिक-विज्ञापन लिखने पर तोड़ हुआ।
जान छूटी, बाहर आये।

दिन भर के काम से
और इस बुर्जुवा कल्चर वाले दाँत के दर्द से
थक कर जल्दी ही वह सोने लगा।
आँख लगी, सपने जगे
शांतिसम्मेलन के सपने उसे आने लगे।
उसे लगा वह भी एक प्रतिनिधि है
जो दूसरों के मुक़ाबिले अपनी बात ज़ोर से
मेज़ पर घूँसे पटक कहता था :
'चुनचुंङ् चुनचुंङ् चुनचुंङ्
शी यांग होची शुन लुंग
शुंन चीं चुन चुंङ् चुंङ् चुंङ्।'
रात भर कानों में उसके गूँजा किये।
साथ ही उन तालियों की तड़तड़ाहट भी
जो साथ में बजती थी, बजती ही जाती थी।
उसने संकेत किया
कोरिया ट्यूनीशिया का

ईरान के तेल का
मिस्र और हंगरी का।
'चुनचुंङ् चुनचुंङ् चुनचुंङ्'
भाषणों के अनुवाद होते रहे, तालियाँ बजतीं रहीं।
सुबह होते होते
उसने बिस्तर पर देखा
सचमुच कोरिया मैदान।
सैकड़ों मच्छरों की पिटी हुई लाशें
एकाध अब भी चुनचुंङ् चुनचुंङ् करते उड़ते थे।
उसने हथेली देखी
लाल लाल
मच्छरों के ख़ून से रंगी हुई।
बहुत देर बाद कवि
भाषण और तालियों का यह रहस्य जान सका !!

प्रेम-कथा

उस रात
सिनेमा से आकर
कुछ भावुक हो
जैसे अपने को समझ लिया उस प्रेमकथा के हीरो-सा
मैं उन्मन-सा
खोया खोया
आँखें भारी
रह रह करता
दिल हुक हुक-सा
गरज़े सब लक्षण वही
जो कि होते हैं

पहुँचे हुए सिद्ध प्रेमी जन के ।
मैं बैठा
जैसे ढुनुँग पड़ी हो मेरी काया ।
मैं भरमाया,
कुछ शरमाया,
कुछ अलसाई-सी करवट ले
जैसे हो एक भूमिका महाकाव्य की
मैंने उनको गोहराया :
रहने भी दो पानसान यह
आओ बैठो !
यह देखो दूधिया चाँदनी—
शुद्ध वनस्पति घी सी
जिसमें नहीं मिलावट
आज बिखेरी है धरती पर
देख देख हमको तुमको
जैसे यह हँसती ।
कहते कहते
मेरा गला अचानक ही भर आया——
प्रेम काव्य था !
पर वह तो बस काठ सरीखी
नहीं तनिक भी
उन पर इसका जादू छाया···
तब मैंने नम्बर दो मन्तर मारा !
तुम कितना अच्छा गाती हो
शाम सुबह जब हरमुनियाँ ले
तुम छत पर घूँघट निकाल कुछ
गाना-सा जब गाती हो
तब पास-पड़ोस मुहल्लेवाले

अपनी छत से
कैसी कैसी नज़रों से तुमको देखा करते हैं !
बहुत 'पापुलर' हो तुम प्यारी
तुम पर वारी
मैं बलिहारी ।
उनके होठ खुले
मैं जीत गया तब ।
मैंने सोचा
आख़िर को मैं भी तो कवि हूँ
जब चाहूँ तो जिसका वैसा मूड बना दूँ
पर वे केवल इतना बोलीं :
'आप नहीं लाये
वह कपड़ा धोनेवाला साबुन !'

और मैं
फिर इस पर क्या कहता ?
मैं जैसे बिल्कुल खिसिया कर आसमान में लगा देखने ।
जैसे चाँद सितारों को मैं लगा कोसने ।
मेरी झेंपी झेंपी सी वे आँखें
झुकी झुकी सी वही निगाहें ।
इनविजलेटरने
पकड़ लिया हो
इम्तहान में जैसे मुझे नक़ल करते ही ।
जैसे मेरी प्यारी कविता
सम्पादक ने
'कूड़ा' लिख कर वापस की हो ।
अब कि झेंप वाली जमुहाई
मुझको आने लगी दनादन ।

लगा
सामने की अल्मारी पर रक्खी
ये देव बिहारी
शैली कीट्स
ये पंत निराला
सभी झूठ हैं
केवल सच है वही हमारी
कपड़ा धोने वाली टिकिया ।

जाड़े की एक सुबह में चारों तरफ़ कोहरे से लिपटा हुआ चार बजे के आसपास, चाँदतारा बीड़ी और कैंची सिगरेट के धुएँ से आक्रान्त, प्रयाग स्टेशन से छूटनेवाला रेलगाड़ी का ऐसा डिब्बा जिसकी खिड़कियों पर शीशा और झिलमिली चढ़ी हुई है :

डिब्बे की हर सवारी साबुत होल्डाल-सी पड़ी हुई। किसी के मुँह पर यह विरोध करने की हिम्मत नहीं कि 'डिब्बे में जघा नहीं दूसरे में जाओ !'

नोट—उपरोक्त कविता छोटी कविताओंके स्टाइलमें है। शीर्षक बड़ा हो जानेके लिए तदनुसार कवि क्षमाप्रार्थी है।

जीवन सौंदर्य

गये स्वर्ग से पुनः ढकेले
समझे पृथ्वी को नंदनवन
आ ही गये यहाँ जब आख़िर
ख़ाहमख़ाह भला क्या क्रन्दन ?
धन्य आज का पुण्य दिवस क्षण
बड़ी बात करके दिखला दी
सही सलामत प्रकट हो गये
माँ की तुमने जान नहीं ली।
मंगल गायन
मंगल वादन
क्यों न मनायें जन्मोंत्सव जन ?

बाद मुद्दतों
के फँस पाया
है चंडूल पुराना गोपन !

ओ माँ ! वह रोता है उसको
बोतल का ही दूध पिलाओ ।
एक बार तो अंक लगा फिर
चाहे दाई को दे जाओ ।
'लाऽलाऽलाऽला' लोरी गाओ
गाड़ी में उसको टहलाओ ।
घुमा घुमा कर हवा खिलाओ
बेबी का कुछ मन बहलाओ ।
'ड्रीमलैंड' की परियों आओ
मुन्ना को योरोप ले जाओ
'हिन्दुस्तान बहुत बोगस है
इसे अमरिकन हवा खिलाओ !'

सूदख़ोर के ऋण-सा है रे !
चिर विकासमय मानव जीवन ।
तन चिल्लाता वस्त्र और दो
पेट चीख़ता भोजन भोजन !
नटखट बालक का अब केवल
भागदौड़ में ही लगता मन
धीमे-धीमे सिखी सुराही
भारू लगता घर का आँगन !

देखा करता उत्सुक लोचन
दादा का वह धूम्रपान स्वन ।
उनकी दाब चवन्नी, पीते
हज़रत सिगरेट कहीं हो मगन ।
पैसा लाओ घर से अपने
उसके साथी यही सिखाते
इसी शर्त पर चाँदतड़ी में
उसकी कभी न आँख मुँदाते ।

अब न रहे वे राजा रानी
अब हिसाब चढ़ आया सिर पर !
हिंदी इंगलिश को भी पढ़ना !
प्राण हो गये उनको दूभर !!
इधर ग़दर के कारण बोले
जाते, उधर आँख है ऊपर—
अद्धाचप वह काट रहा है
गिरता वह कनकौवा भूपर ।
मानसून समझाते टीचर
उधर गेंद-सा है मन नृत्यित
कब छोड़ेंगे प्राण ? सोच यह
होता रह रह-हृदय उच्छ्‌वसित
मोहन के ही संग अगर माँ
आज सिनेमा जाने देतीं
हंटरवाली चित्र दिखा कर
वीर बहादुर बनवा लेतीं ।

दसवाँ दर्जा

पास कर गये

'बालसखा' भूला चिरपरिचित

उस भोले किशोर

का जीवन

'माया' की फ़ाइल पर निर्मित ।

नारी उसको प्रश्न बन गई

देखा करता भय से विस्मित

साथ खेलने वाली उसको

अब कर जाती है रोमांचित ।

यह कैसा परिवर्तन जिसको

देख युवक हो गया भौचकित ।

कविता की कुछ मधुर पंक्तियाँ

अधरों पर उसके परिचालित

कहते, पढ़ते, सुनते-सुनते–

चाँद हो गया उसे मधुर स्मित

और अकेलेपन में उसको

वही रात अब लगती विस्तृत ।

अब वसंत से हैं घबड़ाते

विरहाकुल मन शंकित कंपित ।

हर किताब के हर पन्ने पर

अब केवल 'उसकी' छबि चित्रित ।

. . .

गुड्डा गुड़िया भूल गई

अब नारी का भी निखरा यौवन

फ्राक आदि को दे तिलांजलि

साड़ी में उनका तन शोभन

इधर-उधर सब ऊपर-नीचे
बहुत मांस बढ़ गया देह पर
उनका फ़ैशन औ फ़ैशन-व्यय
भार हो गया प्रतनु गेह पर।
आँखों में कुछ हुई गड़बड़ी
बातें करतीं शक्कर में सनित
जितनी कब्रें बनवा सकतीं
उतनी रूपश्री चिर दीपित।
जीवन केवल चाय और
स्वेटर बुनने तक ही अब सीमित
पति कम-से-कम हो पी० सी० एस०
अन्तर्मन में सब के गुंफित !
पति-पत्नी अब बने प्रणयिजन !
हार, परस्पर करते वंदन।
जो चाहा वह पा न सके
निर्मम जग का कैसा संघर्षण।
नंदन वन के वासी को है
मिली सगी पूतना की बहन
हृष्टपुष्ट है उतना स्वर भी
हृष्टपुष्ट है जितना रे तन !

सुबह वही आफ़िस का पोथा
दिन भर साहब का अभिनन्दन
बालाई तरकारी ले
सन्ध्या को करते गृह परिगमन।
बच्चे बाबू जी की अचकन
टाँग रहे लेकर खूँटी पर

तब तक कल्लो की माँ ने

रख दिया वहीं ला हुक्का भर कर।

तकिये का आलंबन ले कर

गुड़-गुड़ करने लगे धूम्र स्वर

और विचारों के रिक्शे पर

बैठ कल्पना उड़ी बिना पर :

हत्तेरी आफ़िस की ऐसी-तैसी

जिससे चौपट जीवन

साहब की इक क़लम मात्र से

होता आरोहन अवरोहन।

अच्छा खासा लिखा पढ़ा था

मैं भी साहब हो सकता था

कितनों के पिछले रिकार्ड

बस एक शब्द से धो सकता था।

कितना अच्छा होता यदि

डिप्टीगीरी करती अभिनन्दन

कितने बाबू नायब साहब

करते मेरा नत मद चुम्बन!

दुनिया भर की खुराफ़ात—

मीटिंग का होता तुरत सभापति

कौन नियंत्रण करता फिर ?

मनचाही होती जीवन की गति।

अगर मास्टर ही बन जाता

तो गरमी की छुट्टी पाता

तेली के बैलों-सा फिर क्यों

दिन भर जुता हुआ अकुलाता ?

और रेल का बाबू बनता

तो भी होता जीवन पावन

पाँच साल की वर्दी में
घर भर का होता ठाठ सुशोभन।
राशन वस्त्र द्वार पर दोनों
पंडित नाऊवत् घिघियाते
पर इन मरभुक्खे परजों को
कभी न संतोषित कर पाते !
बच्चू हैं कि पढ़े जाते हैं
करते केवल डिग्री संचित
केवल डँड ही पेल रहे हैं
देखो क्या करते हैं निश्चित !
जीवन इन्हीं नालियों से बहता जाता है नित्य उपेक्षित
प्रेम घृणा से औ प्रतिभा केवल आडम्बर से ही पूजित !

लगा चलने झुक लाठी टेक
वृद्ध जीवन के प्रति अनुदार
खाँसी, खटिया, चश्मा, हुक्का,
उसके साथी केवल चार !
कहाँ गई उसकी मधुवाणी
जिससे प्रिय का था मोहा मन ?
किससे सीख लिया बर्राना ?
चिड़चिड़पन होता चिर नूतन !
दुनिया भर की सभी गालियाँ
राम नाम का मंत्र गईं बन
जपते प्रातः संध्या जिनको
गढ़ते नव-मोहन-संबोधन।
हुईं सभी इन्द्रियाँ शिथिल पर,
साग़र मीना अब भी आगे—

रहने दो, कहने को उनके
अटके अब भी प्राण अभागे !
वृद्ध कराता सन ऐसे केशों का
अब ख़िज़ाबमय रंजन
चंद्रमुखी फिर बाबा कह कर
कर बैठे न कहीं अभिनन्दन ।
मिर्च मसाले की शौक़ीनी
नित्य प्रति अब बढ़ती जाती
घर की किचकिच में उनकी
मन-पद्मकली विकसित हो जाती ।
द्रव्य जुटाता ही जाता है
अब भी वह निरीह वृद्धजन
ज्ञात नहीं है स्वर्ग नरक में
चलती रिश्वत नहीं चिरन्तन ।
आया उन्हें बुख़ार उसी में खाँसी चढ़ी बढ़ी फिर तिल्ली
बुढ़ऊ ने तन त्याग किया औ' गई आत्मा सीधे दिल्ली ।

अन्तर्राष्ट्रीय बन नभ में
लगी घूमने घन-सी घिर-घिर
अवसर मिलते ही मानवतन
धारण करने को आकुल फिर ! !

बुढ़ऊ के मरने पर उनके
सब पड़ोस में यही मुखर स्वर-
'चलो बला टल गई, रात भर
करता था बस-खर्ँ र्ँ खर्ँ र्ँ खर्ँ र्ँ ।'*

---

* श्री सुमित्रानन्दन पंतकी एक महान् रचनाकी पाठ-भेद सहित लघु-अनुकृति ।

अमृत घट

अगर हर साल नहीं
तो कम से कम
हर युग में मथ-मथ कर अमृत घट निकाले ही गये-हैं।
साथ-साथ विष की एटमी-झाग
युग की देन !
चर्का दिया है सदा देवता (?) की पार्टी ने
अ-सुरों ने मुँह फाड़ा है केवल मत देकर
हाथ आई चिड़िया निकल जाने पर।

७

आज भी
अमृत घट हाज़िर है।
पन्द्रह अगस्त सैंतालिस को
मथ कर निकाला गया है जो—
जिसमें भरा है अमृत—
मेम्बरी का टिकट
लीडरी की शक्ति विकट
संसद् का भत्ता
कान्फ्रेन्सों का रेल भाड़ा
दावतों का निमंत्रण
रिक्मेण्डेशन का निर्विकार अधिकार—
घर बैठे आनन्द का भण्डार
'जी हाँ सरकार' कहने वालों का जन-सागर अपार
धुँआधार भाषण की तह-पर-तह
धर्म, राजनीति, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति, कला विज्ञान
(रातोरात सबके विशारद !)
जो कुछ मन भाये
सब कुछ कह !!
अमृत घट वह
हाई लेविल-फर्स्ट क्लास।

सभी 'सुरासुर' पार्टीबाज़
दौड़ते हैं—
हथियाने उसे
मुँह बाये, कमर कसे।
अन्तर्राष्ट्रीय मोहिनी के लासे में लसे
रूप से दुरमुसे-डँसे ।

औरों की अक़्ल से
कटे, राहु बन ग्रसे ।

o

कोई नहीं ऐसा
जो विष की एक झाग भी सहे
नीलकण्ठ बन कर !
फिर—
वाहियात कच्छप का पार्ट करने को ही
कोई कब तक फँसे ?

क्या किया ?

थर्ड क्लास भी
न मिला।
ख़र्च राह का।
मारता
कुलाँच
शौक़ वाह-वाह का।
शून्य था दिमाग़ किन्तु जुट गया।

भाव तो उड़ा दिये
मिले न
तुक मगर—

फैल तब भुजा
गई
औ खुल गये अधर।
एक पंक्ति जोड़ सर पटक दिया।

रात बीतती गई
प्रभात
जब खिला
जीत तब सके
प्रचंड
काव्य का क़िला
भिड़ा दिया अजीब एक क़ाफ़िया।

पर न जम सके
अनन्त
तालियाँ पिटीं
हम उखड़ गये
तमाम
हसरतें मिटीं
कि तब तलक 'सभापती' ने झट उठा दिया
उबल पड़े यही कहा कि 'क्या किया—?'*

---

* बच्चनजीकी एक रचना उपरोक्त कविताकी 'मम्मी' होनेका दावा कर सकती है!

एक कील का वक्तव्य

सुनो !
सुनो ! ओ राजपथ के आने जाने वाले नागरिको
सुनो ।
मैं कील पुकारती हूँ तुमको
सुनो ओ नागरिको !
अभी इधर से एक तेज़ दौड़ता हुआ घोड़ा—
—टैगोरी दाढ़ी-सा हवा में लहराता
'सद्भावना-मिशन' की तरह सनासन्न
इस देश से उस देश चक्कर काटता,
प्रयोगों की ऊँची उड़ानों पर भी नये रिकार्ड स्थापित करता
नारों की तरह रह-रह ठुनुक-ठुनुक नाचता

आन्दोलनों की जनांधी-सा उन्मत्त-
तुमने देखा होगा–
वह अश्वमेध के लिए छोड़ा गया घोड़ा।
सुनो! सुनो!
मैंने ही उस घोड़े को इतनी दूर दौड़ाया था
मैदानों पहाड़ों में झँकाया था।
सुनो सुनो!
मैंने ही उसे दिशा-दिशा चक्कर कटाया था
मैंने ही स्वयं घिस घिस कर
उसे आँधी-सा उन्मत्त बनवाया था।
सुनो सुनो! ओ लौटते हुए नागरिको, सुनो
आज वह अश्वमेध का घोड़ा, लड़कों के बहकावे में आ
मेरी सेवा लतिया कर आगे निकल गया है।
सुनो सुनो! ओ नागरिको!
मैंने ही वह घोड़ा—ये लड़के—
मेरी सेवा—

आह! कोई नहीं सुनता
सुनो मेरे मोचियो!
अश्वमेधी घोड़े की नाल से
छूटी हुई इस कील को
क्या तुम भी न लोगे?
ओ मेरे चिरन्तन साथी!
ओ मेरे मोची!!
मुझको उठा लो, हटा लो
नहीं तो विजय-श्री आते-आते इन लड़कों के
पाँव को ख़ून-से लथपथ कर डालूँगी।

सुनो सुनो ! मेरे कारीगर भाई
अपने इस झोले-जैसे मुहल्ले में मुझे भी दो थोड़ी-
सी समाई ।

ओ अश्वमेधी घोड़े से भी प्यारे !
'मोची काम बूट पालिस' के उठते हुए नारे !
ओ सड़कों पर चक्कर काटते हुए मेरे दुलारे !
ओ मेरे साथी !
ओ मेरे मोची !
कोई मुझे नहीं मानता
क्या तुम भी न मानोगे ?

ताजमहल

दालमोट का नगर आगरा
चलता है
तेरे नामों पर ताज !
नहीं तो कौन पूछता आज ?
कोसों दूर दिखाई देता
चिल्लाता है गला फाड़ कर
अपने यश का गान खड़ा यह ।
(आत्मश्लाघियों का गुरु बना !)
पड़ा दिखाई
खिली चाँदनी फैली
जैसे महाकाय दधिकुण्ड लपेटे हो

८

झीनी-झीनी-सी एक मलाई की ही चादर ।
बाहर लाल दिवारें घेरे
जैसे सिंकी डबल रोटी के बीच
धरी मक्खन की टिकिया ।
हम नौसिखिया :
अन्दर आने से घबराते
डर भी जाते ।
यह वह क़ब्रिस्तान जहाँ लगता अब भी भूतों का मेला ।
सोच, वहीं
मर जाती नानी ।
घूम रही हैं प्यासी रूहें
पाने को प्रेमी जन से
वह अपना-अपना साफ़ा-पानी ।
कहीं न हमको ही अपना लें समझ हरम का रसमय भिश्ती ।

देखा :
अब भी कितने आते
तीरथ करने
और क़ब्र पर गिरती जाती
ठन्न ठन्न-सी
कभी इकन्नी
कभी दुअन्नी
कभी चवन्नी !
सोच रहा हूँ
जादू वह, जो सिर चढ़ बोले ।
मरे बहुत दिन हुए
मगर तुम भूल न पाये

ओ नरेश !
अपना ख़िराज ।
देते आये थे पहिले भी
अब भी हम देते जायेंगे
इससे हम न उवर पायेंगे ।

तुमने अपना प्रेम ढला कर साँचे में
कर डाला
आख़िरकार उसे इतना क्यूँ सीमित ?
प्रेमी-पलटन के उन्नायक !
छोड़ गयें हो अपने वारिस
भारत की इस पुण्य भूमि में
अनगिनती ही बेटे लायक़ !!
आज सभी मेमें मुमताजमहल बनने को उद्यत
शाहजहाँ पर फटेहाल हैं
कहाँ मक़बरा बनवा पावें ?
तुमने अपना काम अधूरा जो छोड़ा
वह आज उठाया है
इन 'हिन्दुस्तानी-फिलिम' बनानेवाले
निर्माता, अभिनेताओं ने—
अपना प्राण लगा देंगे
पर पैदा ही करके छोड़ेंगे
लैला मजनू की असंख्य जोड़ी जनता में ।

गुटुर गुटुर गूँ : एक सेल्फ़ डिफ़ेन्स

उस दिन मेरे छज्जे पर आ बैठ गया
मनहूस कबूतर
बहुत उड़ाया, फिर धमकाया
किन्तु गुटुर गूँ करने से वह बाज़ न आया ।
मैंने समझाया—
'तुम मैना होते
घर-भर से कुछ बातें करते ।
होते तोते—
तब भी राम नाम तो मुख से लेते ।
और लाल ही यदि हो पाते
बच्चों का ही मन बहलाते ।

तुम बटेर ही जो बन आते
तुम्हें पाल कर हम चटपट नवाब कहलाते ।'
सब बतलाया
किन्तु गुटुर गूँ करने से वह बाज़ न आया ।
बोल उठा मनहूस कबूतर :
'गुटुर गुटुर गूँ गुटुर गुटुर गूँ
लाल देश से आता हूँ मैं
लाल देश को जाता हूँ मैं
तुम्हें शान्ति का पाठ पढ़ाने आया हूँ मैं
गुटुर गुटुर गूँ गुटुर गुटुर गूँ'
शान्ति कबूतर बोल रहा था ।
तुम मुझको मनहूस कह रहे
मैं ही था वह जिसके कारण
राधा की लुचलुच-सी गर्दन थी कपोतग्रीवा कहलाती
मैं ही हूँ वह जिसके कारण
हर सलीम से नूरजहाँ हँस कर फँस जाती ।
कितने चित्र बनानेवाले मेरे कारण—
बनते हैं प्रभुराज पिकासो !
कितने बिगड़े दिल की चिट्ठी दूर-दूर तक है पहुँचाई
है कितनों की जान बचाई
गुटुर गुटुर गूँ गुटुर गुटुर गूँ
तुम मुझको मनहूस कह रहे
अरे बूर्जुवा कल्चरवाले हिन्दुस्तानी !
प्रतिगामी ।
डालर के नोटों का सुल्फा पिये मदकची ।
हाथों में सत्ताख़ोरों–
आदमख़ोरों के
खेल रहे हो अरे गँजेड़ी

अरे भँगेड़ी !
कभी वोडका भी छक कर तो देखो प्यारे ।
गुटुर गुटुर गूँ गुटुर गुटुर गूँ
क्रान्ति कबूतर बोल रहा था ।
[ज़ाहिर है गाली तो इससे बेहतर मैं भी दे सकता था ।]
लेकिन सीटी बजा-बजा कर मैंने
पूसी को बुलवाया
गोदी में अपनी बिठलाया ।
भ्रान्ति कबूतर बोल रहा था :
'यह कैसा मनहूस जानवर ?
मैं इससे नफ़रत करता हूँ !!
मैं परचों से, गोली औ बन्दूक़
पहाड़ों-जंगल और समुन्दर से भी उतना डरता नहीं
कि जितना इस पूसी बिल्ली से ।
प्रगतिशील तत्त्वों की यह कुलटा विरोधिनी !
हम सब का यह किया धरा चौपट कर देती
खेतिहर के घर की गायों का दूध चुरा कर पीनेवाली
शोषणवादी !
गुटुर गुटुर गूँ गुटुर गुटुर गूँ
काश, तुझे हम मार-मार कर···!'
तब तक मेरा ज़रा इशारा पाकर
पूसी उस पर ऐसा झपटी
उसकी गर्दन, इसका पंजा–
किन्तु शिकंजा छूट गया था
'गुटुर गुटुर गूँ गुटुर गुटुर गूँ' चिल्लाता वह भाग रहा था
मैं पूसी को सहलाता था–
'कोई बात नहीं, जाने दो
कल तो आख़िर फिर आयेगा ।'

ओ पिया, पानी बरसा !

[एक बरसाती बुलेटिन]

[पिया सो रहे हैं। प्रियतमा रातभरकी वर्षाके बाद यह बुलेटिन गाकर उन्हें जगा रही है।]

ओ पिया, पानी बरसा।
यहीं नहीं—
सीतापुर, जौनपुर, सुल्तांपुर, फूलपुर, फैज़ाबाद—
सब कहीं-बीस कहीं बाईस इंच
सुनते हो, रेडियो क्या कह रहा है ?
पुरानों को छोड़, बाढ़ भी नये स्तर क़ायम कर रही है !
सड़कों पर चलतीं हैं नावें बड़ी दूर-दूर
वेनिस हो गये हैं ये जौनपुर फूलपुर।

आसमानी उड़ानें ही भरते हैं
रक्षक हमारे—बेचारे मजबूर !!
अपनी यह पक्की छत भी
तुम्हारी अनयन विरहिणी की तरह
बूँद-बूँद सिसक रही है।
इन्द्र की द्रवित-उदार-बोर कविता-सी सीलन
फ़र्श और दीवारों पर
किताबों पर, चित्रों पर
कपड़ों पर, लत्तों पर
फैल रही है पकड़हीन-कल्पलता की तरह।
घर बनता जाता है टापू
समुद्रों के बीच रहनेवाली रानी की रोमांटिक कल्पना
लगती है भयावनी !
नींव में रसा है पानी,
मरती है नानी
[बेचारी रोज़ मरा करती है]
तुम हो कि
बादलों के मेघ मन्द्र गर्जन में—
विद्युत् के नर्तन में—
सुधि की बौछारों में पायल सुनते-से—
औंध रहे हो—
कहीं ऐसा न हो कि
ओ पिया !
लिया-दिया सब कुछ छियातिया हो जाय।

लगता है डर-सा
घर यह बने कहीं सहसा

मुग़लकालीन खँडहर-सा
डालों पर मानुख लटके बन्दर-सा ।
घटना घटेगी नहीं जब तक
जियें मरेंगे नहीं--

तब तक नोटिस न लोगे
ओ पिया, पुलिस अफ़सर-सा !!
सुनते हो—
ओ पिया !
[पुकार कर]
पा ऽ ऽ नी ऽ ऽ ब ऽ ऽ र ऽ ऽ सा !!

६

मेसर्स मित्र एण्ड सन्स

बाज़ार में राह चलते
उस दिन किसी ने
मेरी साइकिल की टोकरी में पर्चा फेंका था—
'मेसर्स मित्र एण्ड कम्पनी
(दोस्ती के अन्यतम व्यापारी !)
हर तरह का माल यहाँ बिकता है—
हँसी-मज़ाक, प्यार, हमदर्दी, बेचैनी
धूमधाम, ठहाके,
ऊँचे-नीचे सहारे
हर बात पर पीठ ठोंकने वाले हाथ,
चुभनेवाले छोटे-छोटे वाक्यों के नश्तर,

कसमसाता हुआ भीतर ही भीतर
घुटनवाला तीखा दर्द
आँसू पोंछनेवाले रूमाल
झूठे हाँ को ना समझाने वाली अक़्ल
नकली कर्टसीवाले चेहरे
कतरनी-सी पीठ पीछे चलनेवाली ज़बान
माने या न माने—
आपको सस्ते और उचित दामों पर दोस्ती का सौदा
हमारे यहाँ मिलेगा।
आज़मा कर देखिए
अपने सौदे से आपको सन्तोष दिलाना हमारा काम है
आइए—एक बार आइए !'

पर्चे को जतन से मैंने अपने पर्स में
रख छोड़ा है—
अपनी वर्षगाँठ के दिन
उस पर्चे को मैंने अपने-आपको,
उपहार देने के लिए सोचा है।

प्रबुद्ध और प्रबुद्धू

एक था प्रबुद्ध ।
उसने बड़ी मेहनत से बनाया एक ख़ोल—
ख़ूब सख़्त, पुख़्ता सीमेंट-सा ।
लोहे के चने भले ही चबा जाँय
पर उस ख़ोल पर दाँत आज़माना
बुढ़ापे को खुले-आम था बुलाना ।
दाँतप्रूफ़ ख़ोल को बना कर उस प्रबुद्ध ने
थोड़ा-सा गुदगुदा गूदा भीतर धर
जतन से उसे फिर वैसे ही बन्द किया ।
लटकाया अपने दरवाज़े पर ख़ोल को
घोषित कर 'प्रबुद्ध की तपस्या का जीवन फल ।'

ज्ञान की खोज में निकले
कुछ प्रवुद्धुओं ने देखा वह करिश्मा-सा जीवन-फल ।
मुफ़्त हाथ आता देख
[मन-ही-मन गाली दें !]
लपक कर तोड़ा उसे ।
मुँहचियार, कई बार दाँत काट खाया ।

नोचा, खसोटा उसे
उठा-उठा दे मारा–
पर वह 'जीवन-फल'
'माइक' के सामने 'हूटित नेता की भाँति',
अक्षुण्ण ही बना रहा ।
दाँतों पसीना आया
देख कर प्रवुद्धुओं ने उठाई मिल
पत्थर की एक सिल
ले जाकर पटक दिया उस जिद्दी ख़ोल पर–
पिचनी हो गया–वह जीवन-फल
चोला और आत्मा का चूरन
ख़ोल और गूदे का संमिश्रण
अनाड़ियों के तोड़े अखरोट-सा
बिखर गया चारों ओर ।
नमित ज्ञानार्थी प्रवुद्धुओं ने
विजय-श्री दिलानेवाली
पत्थर की सिल को प्रणाम किया ।
चखा जीवन-फल को
कड़र-कड़र करके वे
ख़ोल को चबा गये ।

पा गये गूदे का अंश भी कहीं
तो हँस बोले :
'भीतर से था तो कुछ
(पर) पता नहीं क्या था ?
मुँह फिर बनाकर इकहत्तर कोने का आपस में
कहने लगे :
वैसे है गरिष्ठ बहुत
निश्चित ही पाचन क्रिया में व्याघात पहुँचायेगा !!'

मौत : एक और पहलू

यह जो तुम स्वर्गीय (?) हुए—
ख़ूब हुए ।
रेडियो ने सुबह-शाम जिसको दुहराया
गुहराया :
तुम थे यशःकाय
स्वभाव से बिल्कुल गाय
सुना, मारा था तुमने किसी पटवारी अधिकारी को
जब थे तुम निरीह ग्यॉव !
तब से जीवनभर लीडरी का ही तुमने किया व्यवसाय ।
सारा देश तुमने हवाई जहाज़ से नापा
देश का कोना-कोनी तुम्हारे वक्तव्यों से काँपा

अख़बारों ने तुम्हारा जीवन चरित छापा
मोटी हेडलाइंस के नीचे हँसते हुए फ़ोटोग्राफ़
[बचपन से बुढ़भस तक के—
    मारते हुए पटवारी से लेकर
    श्रमदान के लिए उठाये हुए फावड़े तक के !]
कैमरा मात्र ही जीवन था तुम्हारा।
कॉलम-पर-कॉलम लेख छपा
[जो पहिले ही से
हर प्रेस में कम्पोज़ हुआ रक्खा था।]
सब पढ़ सुन
दफ़्तर जो पहुँचे
तो यह जाना—
आज मरी-छुट्टी है।

इतवार के दिन भी
बैलों की तरह काम करानेवाली कुर्सियों पर
शोक प्रस्ताव पास कर
सिगरेट बाँटते हुए
आज लोग वक़्त काटने के लिए
दियासलाइयाँ उछाल कर खेल रहे हैं।
कुछ जो घर गये
अपनी बीवी-बच्चों के पास दिन बितायेंगे
घर का सामान लायेंगे
[हाँ यदि दूकान भी बन्द रही, तो
ज़रूर तुमको याद फ़रमायेंगे]
मरी-छुट्टी मनायेंगे !
खा-पीकर सो जायेंगे।

जी कर जो दे नहीं पाये तुम
आज—
एक क्षण को ही सही
क़िसी क़दर
तुम्हारे नाम पर ज़रूर पायेंगे ।

१०

दीवार के आर-पार : एक दृष्टिकोण

इस चौड़ी दीवार के उस पार—
तुमने भी रात-दिन चक्कर लगाये
विरह के लोकगीत गाये
लट छितराये—
आँसू बहाये—
और दीवार के इस पार
मैंने 'रोमांटिक-लिरिक' सुनाये
सिगरेट सुलगाये
फ़िल्मी गीत गुनगुनाये :
'जिया चैन ना पाये
हो राजा ऽ तुम ना आये।'

छटपटाये
कई बार जाकर दीवार को माथा नवाये, छू आये ।
गले तक ऊँचे इस दीवारी-पर्दे के आर-पार
जो दो मुँह दीखते थे
उस पर दोनों ने ही मिलन की विवशता के
भाव दरसाये ।
'लट छितराये
आँसू बहाये—'
'जिया चैन ना पाये—
हो राजा ऽ तुम ना आये ।'
कि
एक दिन सहसा यह वेहूदी मसख़री दीवार
जाने क्या सोच कर भहरा पड़ी बदमाश—
पर्दा जो कुछ था वह बिना नोटिस हुआ फ़ाश !

सहसा
मेरी ओर पीठ फेर कर
घुटने टेके एक घोंचू-सी गठरी को
तुम समझाने लगीं :
'प्यारे !
यह सब तो तुम्हारे ही लिए गाती थी
तुमको ही रिझाती थी—
बियोगन का भेस धर
सैयाँ, मैं तुमको ही
आँगन से छत पर बुलाती थीं ।'

और दीवार के इस पार
मैं अपनी गठरी को समझा रहा था :

'सच मानो जो कुछ मैं गाता था
सिर्फ़ इसीलिए कि तुम्हें भाता था
इन फ़िल्मी धुनों में मैं तुम्हें पाता था
सच मानो
इन्हें गुनगुना कर मुझे बड़ा चैन आता था।
....

...............।'

ओह ! ये बेपर्दगी ?
घबराओ मत
यह दीवार का पर्दा
गले तक मैं फिर खिंचवा दूँगा।'

पुरानी ईंट और नया पोर्टिको

चारों तरफ़ खुले हवादार चमकीले ख़ुशनुमा
फूलों से भरे छोटे-छोटे नये बँगलों के बीच
मज़बूती लखौरी ईंटों की परम्परा में चुनी हुई
बाहरी हवा के ताज़े झोकों से बचाने वाली
हर कोठरी असूर्यम्पश्या
नये के स्वागत में बन्द रहने के समर्थवान
गोल फुल्लीदार अटसमस दरवाज़े
गुच्ची आँगन से दिखने वाले आसमानी टुकड़े को
आस्था के नाम पर लोटा भर जल चढ़वाने वाली
तुम्हारी अठारहवीं सदी की [आउट आफ़ डेट] हवेली
पुरानी-पीढ़ी-के-प्रति-श्रद्धा के नाम पर अब भी चल रही है ।

इसका अगला हिस्सा तुड़वा कर
तुम इसे आधुनिक बनाना चाहते हो।
लान, बरामदों और पोर्टिको से
इसे सजाना चाहते हो
आने वालों को बाहर ही बाहर
नकली चेहरा लगा कर
भरमाना चाहते हो?
पर मेरे मित्र!
भीतर की वह असूर्यम्पश्या कोठरी
हवा के ताज़े झोकों को रोकने वाली
मज़बूत लखौरी ईंटों की दीवार
वे अटसमस दरवाज़े--
गुच्ची से आँगन की गुच्ची-सी आस्था
उन सबको--?
अच्छा किया--
तुमने खुद अपने भरमाने के लिए रख छोड़ा है।

गुड्डे की बोतल

प्लास्टिक की चमकदार कार्क वाली
छोटी-सी आलपीन जैसी मुँह वाली
नीली-नीली
अठपहलू,
'इवनिंग इन पेरिस' की ख़ाली शीशी
बेबी के हाथ लगी।
हाथ में लेकर वह उसे बहुत देर सहलाती रही–
नचाती रही–
उड़ी ख़ुशबू सूँघ–
शीशी के भरे होने की झूठी तृप्ति लेती रही
कपड़ों से रगड़ती रही

गन्ध का स्पर्श सुख लेने को।
सोचती रही
अपनी इस प्रियतमा शीशी का कैसे उपयोग करें ?

सावन की रात !
काले-काले हाथी जैसे बादलों से
आसमान केले के जंगल-सा भर उठा
होने को थी बरसात
सूखी 'कमल-छाप' धरती
हाथियों का यह सरकस निहार रही थी।

बेबी ने सोचा :
[इंटलेक्चुअल थी ! सोचती ही !!]
इस ख़ूबसूरत शीशी को
वह गुड्डे की बोतल बनवायेगी
बादलों से बरसने वाला अमृत भर
वह अपने गुड्डे गुड्डियों को सदा के लिए
मौत के झंझट से छुट्टी कराएगी।
और—
आँगन के बीचोबीच
शीशी को एक स्टूल पर रख
[ताकि बरसने वाले पानी की हर बूँद
सिर्फ़ उस शीशी में ही भर जाय]
बेबी अपनी माँ की गोद से चिपट
आँख बन्द कर
परियों के देश जा पहुँची।

गिरने लगी
बड़ी-बड़ी बूँदें तड़ तड़ तड़
रात भर उमड़ उमड़
बादल गरजा किये।
जन-शान्ति के लिए गरज-गरज अपने मतभेद
आसमानी दुनिया में सारी रात
पूरब और पच्छिम के बादल सरजा किये।
अक्सर यह कड़क सुन
सोते में चिहुँक उठती बेबी
बिना आँख खोले
[डर के मारे !]
अपना सिर और भी गड़ा लेती माँ के हमदर्द गर्म घोंसले में।

सुबह की चटकीली धूप ने देखा
घर का कोना-कोना रात की
रस वर्षा में डूबा था——
एक वही छोटी-सी आलपीन जैसी मुँह वाली
नीली-नीली अठपहलू
'इवनिंग इन पेरिस' की गुड्डे वाली बोतल
एक बूँद भी नहीं पा सकी थी।

बिस्तर छोड़ते ही बेबी ने
लपक कर अपने गुड्डे की बोतल उठाई—
उसकी नीली-नीली अठपहलू
गुड्डे की बोतल
उसी की तरह एकदम सूखी थी !!

उदास खिन्न मन
वह बोली :
'मा ऽ !
क्या कल रात पानी नहीं बरसा था ?'

एक मार्क्सवादी प्रेम-पत्र

ओ तुम !
[मैं तुमको क्या कहूँ कुछ समझ में नहीं आता ।
ज़ाहिर है तुम मेरी प्रेयसी हो
पर पता नहीं तुम्हें यह 'आइडिया' पसन्द आये कि न आये
इसलिए—]
ओ तुम !
चटकीली लाल जार्जेट की साड़ी पहिने
सलमे सितारों वाली
मैं तुम पर लट्टू हूँ
मेरी लाल धरती !
ओ हँसिये-सी आँख-वाली

डोरों में वर्ग संघर्ष की लाली
बलशाली हथौड़े-सी दाँत वाली
ओ अहमदाबाद मिल मज़दूरों के माथे पर
चुचुवाई पसीने की बूँद-सी
सरल, तरल।
मैं मज़दूर यूनियन की सेक्रेटरी पद का लोलुप
मैं फ़िर कहता हूँ
मैं तुम पर लट्टू हूँ
श्रमित, थकित
किन्तु नाचता ही जाता है जो।
ओ तुम! हमारे नारों की गूँज-सी उठती जवानी लिये!
सर्वहारा वर्ग की थकन मिटाने को
फ़िल्मी एक्ट्रेसों-की-सी मधु मुस्कान वाली
तुम्हारे कार की रफ़्तार बारबर वोल्गा की गति से
नियंत्रित है।
मैं सच कहता हूँ
तुम्हारा बाप ही एक ऐसा पूँजीपति है
जिसे हम घृणा नहीं करते।
उसे बचा जाँयेंगे
मुझ पर विश्वास करो
[आख़िर तो भी हूँ कर्म का बनिया।]
साथ में तुम्हारे मैं भी मौज से रहूँगा।
गारेंटी करता हूँ
लोक-युद्ध घर में छिड़ेगा नहीं
आजकल तो शान्ति का मैं प्रेमी हूँ।
ओ तुम हिमानी
स्लेज-सरीखे मेरे मन को दौड़ाने वाली
तुम्हें बतलाता हूँ मौज से गिरिस्थी चलाने के लिए

मैंने बनाया है इधर एक पंचसाला प्लान ।
सच कहता हूँ :
पार्टी की क़सम !
अपने बाक़ी चन्दे की क़सम !!
बोगस रसीदें फाड़ कर अपने जेब में डाली हुई रक़म की
क़सम !!!

मैं अपने को इस लायक़ समझता हूँ
चली आओ
ओ तुम
कम ऑन, कम ऑन, कम ऑन !

कुँआरापन : एक सलाह

यह शबनमी फूल की पँखुरियों सा–
नवम्बर दिसम्बर के महीनों की सुबह की
धूप की पहिली किरन सा–
यह कन्या की विदाई के समय किलकते दृगों में
आँसुओं की बूँद सा–
यह अनजानी नगरी की परी के मीठे सपनों सा–
यह तुम्हारा कुँआरापन—
सच मानों
मेरे दोस्त !
अब यह 'आउट-आफ़-डेट' है।

ज़माने की पार्टी-लाइन बदल गई है
तुम हो कि
चिपके हो पुराने फ़ैशन से अब तक
यही तो है साफ़मसाफ़
प्रतिक्रियावाद ।
[इसमें रहा नहीं कोई भी
गतिशील तत्त्व मिस्टर !]

कुँआरापन है राजनीति की
जारज सन्तान—
'आउट-डेटेड' डिब्बे में बन्द मक्खन-सा
उपयोगिताहीन !
ट्रान्सफर पर गये तो मकान तक मिलेगा नहीं ।
चार भले आदमी
शक्की निगाहों से बराबर तुम्हें घूरेंगे ।
शौक़ीन-तबियत हो
क्लब की 'मिक्सड-गैदरिंग' में घुसने नहीं पाओगे ।
कविता का कुँआरपन सीमाहीन
बन जाता है गद्य-पथ पर आवारागर्दी विशुद्ध !
आशिक़मिज़ाजी और कुँआरेपन में है
पुश्तैनी बैर !

इसलिए
ऐ मेरे दोस्त !
पकड़ो फ़ैश्न की डोर
छोड़ो यह क्लासिकल संगीत

टेरो लोकगीत अब।
'डैडी' बनो
और कुछ न कर पाओ
तो कम-से-कम
'मैन-पावर' बढ़ाओ।

दीवारें उठाओ

दीवारें उठाओ
उठाओ दीवारें चारों ओर
शर्म का दान करो
स्वांतः सुखाय, निज हिताय
दीवारें उठाओ चारों ओर !
वहम् [अहम् ?] को मूर्त करो
कठियल रसगुल्ले-सा मुँह बनाओ
बातों के जवाब में सिर्फ़ गर्दन हिलाओ
यह बहुत ज़रूरी हो, तो ही मुस्काओ ।
रिसियाओ तो भी सिर्फ़ एकाध

१२

पुतलियाँ नचाओ।
दीवारें उठाओ
उठाओ दीवारें चारों ओर।
अक़्ल से काम लो,
युग की बकरियों से रोब-बेलि मत चराओ
झँझरी के भीतर ही भीतर हरियाओ, मुरझाओ।
दीवारें उठाओ
उठाओ दीवारें चारों ओर।

एक छक्काई

शहर में उस दिन
मची थी काफ़ी सनसनी–
अधिकारी नेता
और लड़कों में थी ठनी।
शोर था
'गो वैक मिस्टर अब्दुल ग़नी'।

पहुँचा बाज़ार — मोलवाया तरकारी जाकर

बोला वह कुँजड़ा कुछ आँख नचाकर :
'आज रहा 'परदरसन'
बिक गया टिमाटर।'

विस्थापित अहम्वाद : एक डायलाग

'यह दीप अकेला स्नेह-भरा
है गर्व-भरा मदमाता पर
इसको भी पंक्ति को दे दो ।'
'उँहुँक !'
'दे दो'
अच्छे बेटे दे देते हैं ।
'ऊँऽऊँऽऊँऽऊँऽऽऽ'
[पुचकार की ध्वनियाँ]
'दे दो
मुन्ना राजा दे देते हैं
राजा बेटा दे देते हैं ।'

'..................'

[घुड़कने की ध्वनियाँ]
'दे दो
हाँ, हाँ, दे दो।'
'...............'

शाबाश !'

मैं कहाँ जानता था ?

जब-जब मैंने तुम्हें देख
आँखों ही आँखों में
मुसकराने की बाँकी अदा अदा की
जब-जब मैंने तुम्हें देख,
ठंडी-ठंडी सिसियाहट की आहें-भरी
जब-जब मैंने तुम्हें देख
धड़कनों से भरे मासूम कलेजे को
हर क़दम थाम-थाम लिया,
जब-जब मैंने तुमसे
धीरे, किन्तु साफ़-साफ़ लफ़्ज़ों में
प्रणय निवेदन किया,

जब-जब मैंने कनफुसकियों में
पार्क की बेंच पर साथ बैठ
गुनगुनाया :
'हाय प्रिया ! तूने तो जिया लिया ।'
—तब-तब तुम
बराबर मुसकराती ही रही ।

हाय राम !
तब मैं कहाँ जानता था कि—
यह मुसकराना तो सिर्फ़ शिष्टाचार है
तुम तो 'शार्ट साइटेड' हो
और
ऊँचा सुनती हो ।

मज़ाकिया परमाणु

क्योंकि कहा था उनसे परमात्मा ने–
'देखो ! यह सबसे है अमूल्य वस्तु !'
इसलिए चलने लगे तब
अँगौछे में बाँध कर अक़्ल वहीं रख आये
कोने में छिपा कर।
आये यहाँ तो उसी का पड़ा काम !
हुए हैरान,
तर्क का जवाब वह देने लगे डंडे से।
अपनी दुर्दशा देख, रक्षार्थ
लोगों ने अपनाया मज़ाक का ब्रह्मास्त्र—
नाक में उनकी आ जाता दम

दाँतों पसीना आता
किचकिचा उठते
हिचकियाँ बँधतीं
नथुने कभी फूलते पचकते,
आँखों में आग्नेय ज्वालाएँ उमड़तीं—
पर फूट नहीं पातीं,
सारे बदन में तिलमिलाहट वाली—
चुटकियाँ कोई काटता,
सिलवटें बनतीं,
बरसते जब ज्योतिपुंजवाही मज़ाकिया परमाणु ।
बातों में सबसे छनकते वे
मारना भी चाहते पर मार नहीं पाते
[पाते न कोई दाँव !]
काने बैल की तरह हवा में सनकते !
छा गया उन पर मज़ाक का ऐसा भूत—
पेड़-पालव, देव-दानव, मानव-मात्र
सभी उन्हें लगते थे मज़ाक ही करते-से ।

हाल यह देख
दया कर परमात्मा ने
उनका अँगौछा ढूँढ़
भिजवा दी उनकी अक़्ल उनके पास ।
लेकिन समझ का फेर
उसको भी गहरा मज़ाक मान—
क्रुद्ध हो,
नथुने फुला
फेंक दिया आसमान की तरफ़—
उन्होंने अँगौछा
एक रद्दी-सी गाली देकर ।

१३

ख़ब्त

तुम
उँगली की पोरों पर गिनी-चुनी
उन चीज़ों में से एक हो
जिन्हें लोग बुरा कहते हैं, पर समझते अच्छा हैं
तुम्हारे ही जलवे से
चलते हैं इस बूढ़ी दुनिया के सौ काम !
तुम न होते तो
नेता, कवि, विचारक, दार्शनिक
सड़क की पटरी पर धर ईंट
पुण्यार्थी जनता-जनार्दन को प्रेम से बिठा
संस्कृतिहीन उल्टे छूरे से मूँडते

होते संस्कारच्युत हज्जाम !
तुम न होते तो
जाहिलों की बस्ती में—आये दिन—
मचता ही रहता कोहराम आठों याम—
ख़ब्तियों ने यदि न दी होती—
उनके मुँह में लगाम ।
तुम फलो फूलो
लहराओ—
तिपतिया की जंगली बेल-सा
गदराओ
नये अंकुर फुटाओ ।
जिस डाल को पाओ
उस पर लपक कर चढ़ जाओ—
छा जाओ
नये ख़ब्ती बनाओ—
स्वस्थ ख़ब्तियों की हमें काफ़ी ज़रूरत है ।
सिर फिरे वक़्त-बेवक़्त ताल ठोंकनेवालों को जो
बतायें अंजाम,
पहिनाये लगाम,
दें कुछ नया पैग़ाम वैग़ाम !

अहम्‌वादियों का संयुक्तमोर्चा
उर्फ़
मिनिमम एग्रीमेंट

'आओ दोस्त, आओ,
हाथ मिलाओ
लो पान खाओ !
मत भेद ?
उसकी मत करो फ़िक्र
वह तो है हमारे अहम् की खाद
जितना ही डालोगे उतना ही पनपेंगे ।
आख़िर ये—मनुजता, संस्कृति, अन्तर्मन,

मानव-मूल्य, युग-धर्म, अर्धसत्य, शान्ति
और प्रगति आदि शब्दों के जब तक कोई अर्थ नहीं
तब तक हम आप उन्हें साथ-साथ
क्यों न डट कर इस्तेमाल करें ?
आओ दोस्त, इसलिए आओ !
दरअस्ल हमारे और तुम्हारे
समझौते की शर्त सिर्फ़ एक है–
वह यह कि
अपने के सिवा हम सबको समझते हैं मूर्ख !
मात्र मूर्ख ।
ख़ालिस मूर्ख !!

और इस पर
मत-भेद कभी होगा नहीं ॥'

गुलदस्ते के फूलों का वक्तव्य

इस छोटे-से कलात्मक चित्रकारी से भरे-पुरे
गुलदस्ते में–
हरी-भरी फुलवारी से
आपने हमें काँट-छाँटकर जो ला ठूँसा
उसके लिए हम कृतज्ञ हैं।
अब आपको सन्तोष होगा
कि अपनी देख-रेख में
अपनी काँट-छाँट से
आप हम फूलों से कोई सार्थक काम करवा सकेंगे–
चार भले आदमियों को दिखा सकेंगे
कि फूलों के प्रति आपके मन में कितना सम्मान है !!

और हम ?
अपनी जड़ और अपने संगियों से कटे हुए हम–
अब आपकी अनुमति पर
आपके बिजली के पंखे की
भन्नाहट पर थिरकेंगे ।
'ट्यूब लाइट' की रोशनी में खिलने का
अभिनय करेंगे
आपकी तनख़्वाह जैसे पानी के सहारे साँस खींचेंगे
और आपका मन बहलायेंगे
आप हमें हमारी मुसकान की सार्थकता बतायेंगे ।

पर आपके साथ-साथ हमें भी उस स्थिति का भान है
जब हमारी मुसकान पनियल हो जायेगी
और आप ताज़े फूलों के नाम पर
हमें निकाल फेंकेंगे
पर हम सन्तोष की साँस लेंगे–
खाद बन सड़ेंगे और नई पौध के कानों में गुनगुनायेंगे
'बेटा ! ऐसी जगह न जनमना
जहाँ गुलदस्ते के लिए चुन लिये जाओ !

पैसे भर दर्द की अनुभूति : एक क्षण सत्य

आतशबाज़ी के अनार के करिश्मे-सा
एक छोटी-सी गाँठ से दर्द का जैसे नियाग्रा प्रपात फूटता है !
[ठीक वैसे ही जैसे मेरे साहब हँसते हैं
जिसकी वजह से लोग फिरकी की तरह नाचने लगते हैं !]

कोल्हू के बैल की तरह एक पैसे भर जगह में ही
घूम-घूम रमता है
पिटे हुए हीरो की तरह उसी हीरोइन पर बार-बार नमता है ।
पद-यात्रियों सा घूम-फिर सिर्फ़ केन्द्र पर ही थमता है ।

दर्द की उठनेवाली हर लहर से—
लगता है कि मौसम का टेम्परेचर और गिरता जा रहा है

लगता है कि ड्राइंग-रूम की हर कुर्सी टेढ़ी रक्खी हुई है
लगता है कि रोज़ के मुक़ाबिले आज घर में अधिक लापरवाही
बरती जा रही है।

लगता है कि तरकारी बहुत रद्दी बनी हुई है
लगता है कि जो लोग हँस रहे हैं
वे सब मेरे इसी दर्द पर हँस रहे हैं
[और आख़िर उस वक़्त हँसने की क्या बात हो सकती है ?]
क्यों नहीं वे अमृतधारा, आयोडेक्स और टिंचर लेकर दौड़ते ?
क्यों नहीं संसार का हर आदमी मेरा दर्द सेंकने के लिए
एक-एक अँगीठी सुलगाता ?
क्यों वह रेडियो में बैठा हुआ इस वक़्त सितार बजाने के बहाने
मेरे इसी पैसे-भर दर्द पर हर बार अपना मिजराब ठुनका रहा है ?
क्या उसे दर्द मिटाने की और कोई तरकीब नहीं आती ?

दर्द का गुन गानेवाले
कभी इसके जो पड़ते पाले
तो कथकों की तरह 'नचैइया' भले ही बन जाते
पर 'लिखैइया' कैसे हो पाते ?
तब वे सिर्फ़ चिल्लाते-भिन्नाते-भिनभिनाते
दर्द का ये गुन गाने वाले
कभी इस पैसे-भर दर्द के जो पड़ते पाले—
यक़ीन मानिए
मुँह हो जाता उनका कार्टूनिस्ट के हवाले।

कविता वापस लौटाते हुए नये सम्पादक का कवि को एक नोट

हूँ ऽ ऽ ऊँ ऽ ऽ ठीक है। लेकिन भई-
अब तो चीज़ कुछ लिखो नई।
इसमें भला क्या बात बनी ?
तुकों की आपने जुटाई है अनी !
अरे मियाँ ! चेतना को उढ़ाओ लिहाफ़।
इस पर टेकनीक की चढ़ाओ गिलाफ़ !
वही उषा, अरुणा, वही चन्द्रयामा।
इसमें कहीं भी न ब्रैकेट, न कामा।
इसके तो माने भी हैं बिल्कुल साफ़-
कविता को बनाइए हज़रत जिराफ़।

लोगों की पहुँच से इसे करो बाहर—
ऊँची काव्य-कोपलें तभी तो सकोगे चर।
कविता को गद्य करो, गाओ
भोंडी आवाज़ में पढ़ कर सुनाओ।
चौंकाओ, कूंथ कर माने भिड़ाओ ऽ
श्रोता को शून्यवत् मुँह खुलाओ!
ऐसा कर पाओ तो लिखो-लिखाओ
भेजो छपाओ! नहीं तो जाओ;
[नाक कटाओ!]

मिस्टर टाइमपीस

वक़्त का एटम जैसे ही खण्डित हुआ
उसका कणानुकणानुकणानुकण
लेकर चम्पत हो गये मिस्टर टाइमपीस
बाक़ी वक़्त सब उड़ गया हवा में
औरों के पल्ले पड़ी सिर्फ़ झुँझलाई खीस—
ज़िन्दगी भर अपना वह वक़्त मिस्टर टाइमपीस ने
दिया नहीं किसी को, माँगा बीस-तीस ने !
[इसीलिए समय का चक्र बिना उस टुकड़े के आज तक न
पूरा पड़ा ।]

दुनिया में सिर्फ़ वे वक़्त के ही क़ायल थे
वक़्त के मालिक के सदा से वे लॉयल थे।
'अच्छा-वक़्त', 'बुरा-वक़्त'
ज़िन्दगी को सिर्फ़ दो हिस्सों में छानते थे।
हर बड़े आदमी की तरह
वक़्त के उस नायाब टुकड़े को
वे भी पैसे की तरह जानते थे!
मानते थे
ख़ुद को खपाइए
चाहे मर जाइए
पर वक़्त को बचाइए।

वक़्त को बचाने की वे अनेक ट्रिक लड़ाते थे
दफ़्तर की घड़ी बन्द करके तब वे घर आते थे
सोते तो बन्द घड़ी पास ही सुलाते थे
घड़ी की सुई रोक कर ही किसी से बतियाते थे।

पर वक़्त की मार।
दुर्निवार—
वक़्त के ही रोग में चल बसे मिस्टर टाइमपीस।
बक्स में उनके निकले—
लाखों मिनट, हज़ारों सेकेण्ड, सैकड़ों घण्टे!
बचे हुए वक़्त के नाम पर
शहर के सैकड़ों यतीम नेताओं, डाक्टरों, वकीलों
और प्रोफ़ेसरों को ख़ैरात वह मिली।
मिस्टर टाइमपीस की
उसी दिन से तो जय बुली।

ख़ुदा का ठेंगा : एक रुबाई

स्पीच तो
देते थे वे हरदम बड़े ज़ोर की ।
शक्ल मगर
पाई थी एक नम्बर चोर की ।
अक़्ल के नाम
पर मिला ख़ुदा का ठेंगा,
दुहाई में
उचारते थे लेनिन और गोर्की !!

चाँदनी का व्यापार

क्यों भई,
क्या किसी को घूस देकर
चाँद पर क़ब्ज़ा नहीं किया जा सकता ?
बेकार इतनी चाँदनी यूँही फेंक देनेवाला कितना मूर्ख है !
शकर और मैदे के खुले बोरों की तरह ये चाँदनी–
घी के कनस्टरों-सी उजली ये चाँदनी–
अगर अपने हत्थे चढ़ जाती—
आसमान के दोनों छोरों पर 'शुभ' और 'लाभ' लिखकर
यदि हम चाँदनी को किसी गोदाम में बन्द कर पाते
थोड़ी-थोड़ी चाँदनी रोज़ हम बेंचते–
अपनी कालिख की मिलावट करते

'सुद्ध चाँदनी' की लेबुल लगा
अपने गनेश-लछमी पै चढ़ाते–
बिजनिस बढ़ाते ।

पर सच बताओ यार !
क्या चाँद का 'कापीराइट' देने के लिए
वह बहुत रक़म माँगता है ?

एक छोटा-सी अजीब प्रार्थना

हे प्रभु !
उम्रों के मालिक
बच्चों को बड़ा मत कर ।
उनके बड़े होते ही हम बूढ़े घोषित हो जायेंगे ।
कालिख की कूचियों से मुँह रंग कर भी
हम ठहर न पायेंगे—
डगमगायेंगे—
बूढ़े हो
अपनी ही आँखों के सामने देखी न जायगी उठते ग़ुब्बारों-
सी उनकी जवानी

ओ उम्रों के मालिक !

शायद हमें भी वे अपने गुलछर्रों-से
उसी तरह–दूर
तालों में बन्द कर रखेंगे,
जहाँ से
हम कभी सुन तक न पायेंगे
स्वर भी,
उस भूले सुख का।

हे प्रभु
ओ उम्रों के मालिक।
इसीलिए बच्चों को बड़ा मत कर–
रहम कर–
उनके बड़े होते ही हम बूढ़े घोषित हो जायेंगे।

माँ-बाप के लिए

बच्चों को बन्द करो
शोर बहुत करते हैं !
हमारी ठिठोली में मुए
आ पसरते हैं !!
कालेज, अस्पताल और
नर्सरियाँ खुली हैं जब—
माँ-बाप के ही लिए
कम्बख़्त क्यों मरते हैं ?

१५

गोंचो : कोंचो

गोंचने का मन होता है–
गोंचो
नोंचने का मन होता है–
नोंचो !
निब ज़रा तेज़ बनवा लो–
फिर–
कोंचने का मन होता है–
कोंचो !!

वीणापाणि के कम्पाउण्ड में

उस दिन–
वीणापाणि के कम्पाउण्ड में काफ़ी भीड़-भाड़ थी।
नारों से गूँज रहा था बँगले का बरामदा
बड़े-बड़े पोस्टरों, काले झण्डों से
हंसराज चपरासी के होश ख़ता हो गये।
रोकने, धमकाने की
कोशिश की काफ़ी। पर सब बेकाम
भीड़ हो गई जाम।
हल्ला बढ़ता जान
हार कर
मन्त्री की भाँति प्रदर्शनकारियों के सम्मुख

हाथ जोड़े
रोष को सरकारी मुसकान से दबाये
गिरते हुए शाल को उठाने का अभिनय-सा करती
देवी सरस्वती ड्राइंग रूम से–
आईं बाहर।
देखा उन्होंने एक लम्बा डेपुटेशन—
कमलभ्रमर, अलि गुलाब, चाँद और चाँदनी
किरन, दीप, भँवर, लहर, नदी, नाव, पतवार,
खंजन, चकोर, मीन, मोर, उषा, रात, नखत,
सावन-सघन-घन, परछाईं, आसमान, तूफ़ान,
इन्द्रधनुष जिनकी था नेतागिरी कर रहा,
बोले वे चिल्लाकर—
'माता! हमें नई कविता से निकाल दिया गया है।
युग-युग का दिया हुआ सम्मान, रुतबा,
न जाने कितने मेरिट सर्टिफ़िकेट, गोल्डमेडल,
सबका सब
कल के छोकरों ने आकर छिनवा लिया है।
हमको बना दिया है पूर्ववत् जड़ जंगम
कमल की औक़ात—
मेज़ पर टिकटिकाती घड़ी जितनी भी रही नहीं!
आसमान–
उतना भी टिका नहीं जितना है कलमदान।
अब तक कौन-सी मुसीबत थीं जिसमें न थे साथ–
नदी, नाव, पतवार, काली रात, तूफ़ान?
कौन-सा सुख था जिसमें न थे साथ–
अलि गुलाब, चन्दन-सी चाँदनी, सुहावनी?
अब तो सुख-दुख
नई कविता की सरकार इसके बिना भी मान लेती है।

देवी !
हमारी प्रतिष्ठा को गहरी चोट पहुँची है–
हमारी ट्रेड-यूनियन लड़ेगी आख़िरी साँस तक !
कविता को हमने बनाया
धाक हमने जमाई उसकी
हम रहे उसके सच्चे कार्यकर्ता-उपकरण
कालिदास भवभूति से लेकर
हम रहे पन्त निराला के वरण !
अपने हम स्वत्वों का होने न देंगे ऐसा कायर मरण !
आप हैं इसकी 'हेड ऑफ़ डिपार्टमेण्ट'
इसीलिए आये हैं हम आपकी शरण !'
नेता ने ख़त्म ज्यों किया भाषण
प्रदर्शनकारी चिल्ला पड़े—
'इनक़लाब ज़िन्दाबाद
नई-फई कविता की सरकार सब मुर्दाबाद
बढ़ चलो इलाहाबाद !'
माता भारती चतुर 'हेड' की भाँति
शाल को दुबारा गिराकर ओढ़ने का उपक्रम करती हुई–
[जैसे कोई बन्द गले के कोट में ऊपर का बटन खोल साँस ले]
हँसती-सी–
टालने वाली टेकनीक के इष्टदेव का स्मरण कर,
बोलीं–
तुम सब घिस चले,
पिस चले,
बुड्ढे हो चले हो–कभी सोचा है ?
जमाई होगी तुमने ही धाक
रक्खी होगी तुमने ही नाक !
पचपन साल कब का पूरा हुआ–

लेकिन रिटायर न होगे कभी क्या तुम ?
पेंशन न पाने का अधिकार
सिर्फ़ मन्त्री को—मुझको है !
उपकरणों को वक़्त पर रिटायर होना ही होगा ।
जाओ कामरेडो !
ट्रेड-यूनियन के फेर में न पड़ो पड़ाओ ।
वक़्त का तकाज़ा है जाओ आराम फ़रमाओ !!
हंसराज !
[बोलीं चपरासी से—]
नाम सबके
काम सबके
नोट करके फाइल में पेश करो !'
सहसा एक लुगबुगी-सी छा गई
कम्पाउण्ड के आलम में
इन्द्रधनुष, कमलभ्रमर, किरनदीप,
नाव और पतवार
खिसक-खिसक राह-सी बनाने लगे
ताल में ढेला पड़ने से
काई-सा बिथुरने लगे !
देखा मन्त्राणी ने
आ रही है तरुणी-सी बुढ़िया एक—
अतलस का लँहगा लोकगीत-सा ख़ुशनुमा
अधपेटा ब्लाउज़
[खुले हिस्से में आँख की पुतलियाँ काट कर चिपकाई हुई]
मुँह पर ऐश-ट्रे का पाउडर
गालों पर सुहागिन सेंदुर की ललाई रगड़ी-सी
माथे पर चन्दन और कुंकुम का था त्रिपुण्ड
फुट भर ऊँची पैरों में सैण्डिल

[ज़मीन से जो न दे तनिक भी सम्पर्क !]
हाथों में सफ़ेद दस्ताने
[निकटतम अनुभूति देने में जो बाधक !]
दो चोटियाँ—
एक असली, एक नक़ली बालों की—झब्बेदार।
आगे बढ़ वह बुढ़िया तरुणी
बेतुक बेताल-सी बोल पड़ी—
'टकर-टकर घूरो मत।
मैं ही कविता हूँ।
मेरा यह बिगड़ा हुआ रूप
है नये सौन्दर्य-बोध का प्रतीक मात्र।
कुछ ही दिनों में तुम्हें यही अच्छा लगने लगेगा।
हो सके तो मुझको सँवारो—
अपना सब कुछ मुझ पर वारो।'
मन्त्राणी चकराईं
फिर कुछ सोच मुसकाईं
कविता महरानी को भीतर ले धाईं।
पहिनाया उसे एक नेकर कमीज़
बनाया एक जूड़ा
पैरों में महावर—तिस पर से पायल !
[उतार दिये सैण्डिल—हाथों के दस्ताने।]
माथे पर टिकुली कविता सुहागिन के लगा,
कहा—
'जाओ, आज से तुम्हारा नाम होगा
'गद्यम्पू गीत'
देखने में सदा ही रहोगी तुम बेशऊर इसी तरह
फिर भी तुम्हारी हर चाल में, ढाल में,
एक लय होगी, एक अर्थ होगा।

जाओ, इस युग को
ऐसी ही वेशऊरी की ज़रूरत है।'

नेकर पहिन, नई कविता
छमछम पायल बजाती
तरुणी बुढ़िया
जूड़ा किये

आगे-आगे चलने लगी
पीछे-पीछे था पेंशनयाफ़्ता डेपुटेशन-दल !
तरुणी बुढ़िया से
चपरासी हंसराज ने इनाम पा,
असीसा :
'जाओ, कल्याण हो !
कोई मज़ाक़ भी करे इस रूप पर
तो वह भी नई कविता हो जाय।'

दल हँस कर चला गया।
बँगले के क़म्पाउण्ड में
भूखे बच्चे-सा शोर
दूध मिल जाते ही
धीरे से सो गया।

...नपीठ
काशी

उद्देश्य
ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध
और अप्रकाशित सामग्रीका
अनुसन्धान और प्रकाशन
तथा लोक-हितकारी
मौलिक-साहित्यका निर्माण
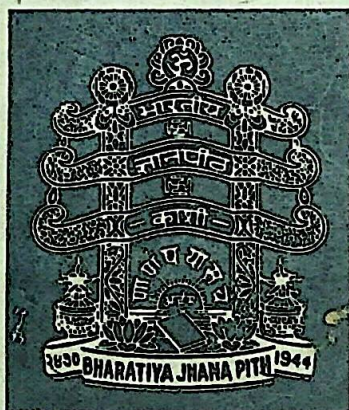
संस्थापक
साहू शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय